

लोक-तत्त्व परिभाषा स्वरूप एवं विकास

डॉ. सुरेश सिंह राठौड

मनुष्य के चेतन तथा सामुहिक अचेतन के सम्मिश्रण से निर्मित लोक-मानस का प्रतिनिधित्व "लोक" शब्द होता है। सांस्कृतिक प्रवाह के रूप में "लोक" की स्थिति देखने पर स्पष्ट होता है कि यह शब्द उस मानव समूह का बोध कराता है, जो आदिम समाजों, ग्रामीण समाजों तथा नागरिक समाजों में एक समान रूप से निवास करने वाला कोई भी मानव समूह हो सकता है। इस प्रकार जब हम "लोक" को परिभाषित करते हैं तो कभी सामाजिकता से, कभी जातीयता से एवं कभी उसे ग्रामीण या कृषक समाजों के साथ जोड़ कर परिभाषित करते हैं। डॉ. शंकर सेन गुप्ता "लोक" को परिभाषित करते समय लोक की सृजनात्मक प्रतिभा तथा पूर्वजों के ज्ञान से जोड़ते हुए कहते हैं— "किसी न किसी रूप में हम सभी "लोक" शब्द से सम्बोधित किये जा सकते हैं, क्योंकि इनमें से कोई भी परम्परा विहीन तथा पूर्वजों के द्वारा छोड़े गये मौखिक ज्ञान से वंचित नहीं है।"¹

अतः जिस प्रकार अनेक विद्वानों ने अपने मतानुसार लोक को परिभाषित किया है, उसी प्रकार लोक-तत्त्व को भी विवेचित किया है। "लोक-तत्त्व" को परिभाषित करते हुए डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है— "लोक मनु य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पाण्डित्य चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है, जो परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है, ऐसे "लोक" की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं, वे "लोक-तत्त्व" कहलाते हैं"² डॉ. सत्येन्द्र द्वारा दी गई परिभाषा से स्पष्ट होता है कि लोक-जीवन के स्वरूप को प्रदर्शित करने वाले तत्त्व ही लोक-तत्त्व कहलाते हैं। डॉ. कुन्दन लाल उप्रेती लोक को बौद्धिक चेतनाहीन समझते हैं और ऐसे लोक की अभिव्यक्ति कराने वाले तत्त्वों को लोक-तत्त्व की संज्ञा देते हैं। उन्हीं के शब्दों में "लोक ज्ञान बौद्धिक चेतना, सुसंस्कृत तथा परिष्कृत एव शिक्षा से हीन एक ऐसा समुदाय है, जो आदिम प्रवृत्तियों तथा परम्पराओं की धारा में बहता हुआ अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखता है। ऐसे "लोक" की अभिव्यक्ति जिन तत्त्वों के माध्यम से होती है, वे लोक-तत्त्व कहलाते हैं।"³ जब डॉ. उप्रेती परम्पराओं की बात करते हैं, तो स्पष्ट रूप से यही बताना चाहते हैं कि ये परम्पराएँ ही हमारे लोक-तत्त्व हैं।

लोक-तत्त्वों का स्पष्ट उल्लेख करते हुए त्रिलोचन पाण्डे लिखते हैं— "संस्कृति की निम्न स्तरीय धारा उस लोक सामान्य धरातल का निर्माण करती है, जिसमें उसके लोक-सामान्य तत्त्वों की प्रतिष्ठा होती है। अर्थात् जिसमें दैनन्दिन जीवन के क्रिया-कलाप, विश्वास, प्रथाएँ, रहन-सहन आदि की "लोक" परम्पराएँ गतिशील होती रहती हैं।"⁴ इसी पुस्तक में पाण्डेय जी लोक-तत्त्वों को दो वर्गों में विभाजित करते हुए लिखते हैं कि एक तो वे तत्त्व जो कवि मानस में व्याप्त रहते हैं, जिनमें कवि काव्य सर्जना में प्रवृत्त होता है, दूसरे तत्त्वों के बारे में स्पष्टीकरण देते हुए वे कहते हैं— "साहित्य के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले दूसरी ओर वे लोक-तत्त्व हैं, जो साहित्यकार की विषय-वस्तु के रूप में अथवा कथाभिप्राय-आदि के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। ये तत्त्व केवल विषय-वस्तु के रूप में अथवा कथाभिप्राय आदि के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। ये तत्त्व केवल विषय-वस्तु का ही निर्माण नहीं करते, अपितु "लोक" शब्दावली, छन्दों, लोकोक्तियों आदि के द्वारा उसके वस्तु निर्माण में भी प्रयुक्त होते हैं। इन तत्त्वों का प्रयोग जानबूझकर किया जाता है। ये विभिन्न लोक-तत्त्व कवि के अचेतन मानस अथवा उसके लोक-सांस्कृतिक धरातल से सम्बन्ध रखते हैं।"⁵ इससे स्पष्ट होता है कि लोक वार्ता के तत्त्व केवल लोक-मानस

के ही तत्त्व नहीं होते, अपितु वे लोक सांस्कृतिक धरातल के भी तत्त्व होते हैं। अतः लोक-तत्त्वों का मानव समाज में स्वतन्त्र विकास होता है तथा ये लोक-जीवन का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। उपर्युक्त किये गये विवेचनोपरान्त यह कहा जा सकता है कि वे तत्त्व जो लोक-जीवन के स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं, लोक-तत्त्व कहलाते हैं या यों कहा जा सकता है कि "लोक" द्वारा अपनाये गये विविध क्रिया-कलाप ही लोक-तत्त्व कहलाते हैं।

डॉ. भीष्म मखीजा ने लोक-तत्त्वों में प्रकृति, जीवन-यापन विधि, मनोरंजन की विधियाँ तथा भाषा को प्रमुख स्थान दिया है। प्रकृति में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नद-नदीश आदि दृश्यमान पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है। अर्थात् मानवेतर दृश्यात्मक जगत् में जो कुछ दर्शनीय हैं, उसे ही हम प्रकृति की संज्ञा देते हैं। जीवन-यापन विधि में सामान्य जन द्वारा जीवन-निर्वाह हेतु अपनायी गयी मूलभूत आवश्यकताओं एवं रीति-रिवाजों को स्थान दिया जाता है। यथा-भोजन, आवास, वेश-भूषा, व्यवसाय, रीति-रिवाज तथा धर्मभावनाएँ जीवनयापन विधि में आती हैं। मनोरंजन विधियों के अन्तर्गत मेले, उत्सव, खेल-तमाशे, शिकार तथा ललित कला आती हैं। भाषा के अन्तर्गत सामान्यजन की लोक शब्दावली युक्त भाषा तत्त्व को रेखांकित किया जाता है

संक्षेप में लोक-तत्त्वों को अग्रांकित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है—

1. प्रकृति

2. जीवनयापन विधि—(क) भोजन; (ख) वेश-भूषा; (ग) आवास; (घ) व्यवसाय; (ङ) रीति-रिवाज; (च) धर्मभावना।

3. लोक-जीवन विधि—(क) शास्त्रोक्त विश्वास-मन्त्र-तन्त्र, जप-तप, स्तुति वन्दना; (ख) लौकिक विश्वास-जादू टोना, टोटका, झाड़-फूँक, गण्डा, ताबीज; (ग) शकुन अपशकुन सम्बन्धी धारणाएँ; (घ) अन्ध-विश्वास

4. मनोरंजन विधियाँ—(क) मेले, उत्सव; (ख) लोक-कलाएँ—लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक चित्र, लोक शिल्प; (ग) खेल-तमाशे-कुश्ती, दंगल, बच्चों के खेल, रस्सा खींच, बाजीगरी, नटों के खेल, कठ-पुतली का खेल।

5. भाषा—(क) लोक शब्दावली; (ख) लोकोक्तियाँ; (ग) मुहावरे; (घ) पहेलियाँ; (ङ) लोक-सुभाषित;

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लोक-तत्त्व में लोक के आचार-विचार ही आज हैं, जो लोक-जीवन का निर्माण करते हैं। ये लोक-तत्त्व "लोक" की परम्परा होती हैं, जिनका प्रवाह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता रहता है। ये तत्त्व हमारी कृषि, अर्थशास्त्र, साहित्य, पर्व, उत्सव, नृत्य, संगीत, कथा-वार्ताएँ तथा आचार-विचार में सम्मिलित हैं।

लोक-तत्त्व का उदय एवं विकास—"लोक" शब्द की प्राचीनता असंदिग्ध है। जिस प्रकार मानव का इतिहास पुराना है, उसी प्रकार "लोक" का इतिहास भी प्राचीन है। "लोक" शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में मिलता है। विद्वानों का मत है कि लोक शब्द भारतीय संस्कृति में उतना ही प्राचीन है जितना प्राचीन 'वेद' शब्द। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में "दिव्य" और "पार्थिव" इन दो अर्थों में "लोक" शब्द का प्रयोग किया गया है। अनुमान है, उसी समय से "लोक" और वेद कहने की परम्परा चल पड़ी होगी। किसी समय "लोक" का अभिप्राय सामान्य जीवन से लिया गया था।⁶

व्याख्याता, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, मानित विश्वविद्यालय, जयपुर

इस प्रकार जब “लोक” शब्द इतना प्राचीन है तो लोक-तत्व भी प्राचीन है, क्योंकि लोक-तत्व तो हमारी सुदीर्घ परम्परा का फल है, जो हमारे संस्कारों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त होते जा रहे हैं अतः साहित्य के इतिहास की जितनी प्राचीन परम्परा मिलती है, प्रायः उतनी ही प्राचीन परम्परा लोक-तत्व की भी विद्यमान है, क्योंकि लोक-तत्वों का बखान साहित्य के माध्यम से ही होता है। डॉ. त्रिलोचन पाण्डे लोकवार्ता के तत्वों के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—“ईसा की प्रथम शताब्दी के आस-पास लौकिक संस्कृत साहित्य का विकास होने पर हमें भारतीय परम्परा में लोकवार्ता के ऐसे तत्व अवश्य दिखाई देने लगते हैं, जिन्हें साहित्य की परिधि से अलग करके पहचाना जा सकता है तथा स्वतन्त्र रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है। .. यह ठीक है कि लोकवार्ता का अध्ययन यद्यपि आधुनिक युग का विषय है और इसका इतिहास भी लगभग दो सौ वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं है, फिर भी इसके विविध रूपों का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन है, जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता।”⁷ भारतीय आचार्यों की दृष्टि सदैव लोकोन्मुखी रही है। अतः लोक-तत्वों के उदय व विकास को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत ढूँढा जा सकता है—

1 संस्कृत काव्य शास्त्रियों की दृष्टि; 2 धर्मगाथाओं, अध्येताओं की दृष्टि; 3 कथा-साहित्य अध्येताओं की दृष्टि; 4 प्राचीन साहित्य स्रोत; 5 लोकवार्ता संग्रह-कर्ताओं की दृष्टि; 6 प्राचीन साहित्य में लोक-तत्व⁸ साहित्य और “लोक” का धनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य “लोक” से सम्पन्न होकर ही रचा जाता है तथा “लोक-तत्व” साहित्य के माध्यम से ही अभिव्यक्ति पाते हैं। संस्कृत काव्य शास्त्र के आचार्यों में भरत मुनि से लेकर विश्वनाथ तक प्रायः सभी आचार्यों ने लोक-तत्वों का उल्लेख न्युनाधिक रूप से अवश्य ही किया है। आचार्य भरत मुनि ने अपने ‘नाट्य शास्त्र’ में अनेक लोक-विश्वासों, लोक-प्रचलित गान-शैलियों भाषा-रूपों, परम्पराओं तथा नाटक खेलने से पूर्व की जाने वाली आराधना पद्धति आदि लोक-तत्वों का उल्लेख किया है। नाट्यकार ने अनेक लोक नाट्यों, खेल-तमाशों आदि का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार ‘नाट्य शास्त्र’ से लोक-तत्व दृष्टिगोचर होते हैं।

आचार्य भामह ने काव्य के अनेक भेद कर लोक-साहित्य को पृथक किया, वहीं आचार्य राजशेखर ने अनेक लोक-विश्वासों का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया है कि मंत्र-तन्त्रों के प्रभाव से, तंत्रानुष्ठान से प्रतिभा उत्पन्न होती है। उन्होंने ‘कवि समय’ को व्याख्यायित करके तथा लौकिक काव्य के भेद कर लोक-तत्वों की ओर संकेत किया। विश्वनाथ ने ‘साहित्य-दर्पण’ में लोक प्रचलित नाट्य रूपों का निर्देशन किया है। नाट्य-शास्त्र लोक-तत्व पर आधारित था। इस प्रकार “संस्कृत के आचार्यों ने लोक-परम्परा के तत्वों का महत्व स्वीकार किया था, भले ही किसी विशिष्ट नाम से उन्हें अभिहित न किया हो।”⁹ इस प्रकार संस्कृत काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में लोक-तत्वों का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। धर्म गाथा के अध्येताओं ने भी अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि भारतीय व यूरोपीय साहित्य रचनाओं में समानता है। गाय, पशु-पक्षी, सूर्य-देवता, मेघों आदि की पूजा-अर्चना आदि के द्वारा लोक-कथाओं में आने वाली कथाओं की क्रमबद्ध व्यवस्था प्रस्तुत की। भारतीय कथा-साहित्य-अध्येताओं ने ग्रिम बन्धुओं, पेजन्, कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों से प्रेरणा ग्रहण कर लोक साहित्य के प्रति रुचि जगायी और उन्होंने साहित्य के सांस्कृतिक पक्षों का उद्घाटन किया। हमारे लोक-साहित्य में व्याप्त जादू-टोनों, लोक-नाट्यों, लम्बे लोक-गीतों, लोक-वाद्यों तथा लोक-संगीत में लोक-तत्वों को स्पष्ट किया। ग्रामीण जनसमुदाय में व्याप्त मनोरंजन के साधनों, उत्सवों, स्वाँग, नौटंकी आदि के माध्यम से लोकोन्मुखता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है वीरपूजा, कठपुतली के नृत्य तथा सामाजिक ऋतु उत्सव आदि

विषयों की ओर कथा-साहित्य अध्येताओं की दृष्टि गयी, जो निश्चित रूप से लोकवार्ता की सामग्री हैं।

“कीथ ने यह मत प्रकट किया कि वैदिक ऋचाएँ सम्भवतः फसल पकते समय किये जाने वाले अनुष्ठानों की अभिव्यक्तियाँ हैं।.... वर्षा के लिए किये जाने वाले टोटकों अथवा मांगलिक अवसरों पर प्रचलित अनेक जातियों के आचार अभिनय जैसे ही हैं, जिसकी पृष्ठभूमि में गीत गाए जाते हैं।”¹⁰ कीथ महोदय ने जिन तत्वों का वर्णन किया है, वे हमारे लोक-तत्व ही हैं, जो हमारे लोक-जीवन में सर्वत्र व्याप्त हैं। लोक वार्ता संग्रह कर्ताओं की दृष्टि में भारतीय लोकवार्ता का स्वतन्त्र रूप से संग्रह आधुनिक काल में आरंभ हुआ। डॉ. त्रिलोचन पाण्डे के अनुसार—“अंग्रेज शासकों का भारत के विभिन्न स्थानों में शासन की दृष्टि से वहाँ के इतिहास, रीति-रिवाज, प्रथा, परम्परा आदि को जानना आवश्यक था।.....यहाँ के जन-जीवन को समझने के लिए जिस प्रकार गजेटियर तैयार किये जाते थे, उसी प्रकार स्थानीय रीति-रिवाजों और गीतों, कथाओं के भी संग्रह प्रकाशित किये जाते थे।”¹¹

उन्नीसवीं शताब्दी में विद्यानुरागी विद्वान अंग्रेजी लेखकों ने लोक-जीवन सम्बन्धी कार्य किया। जाति-विज्ञान सर्वेक्षणों द्वारा जन-जातियों के जीवन धर्म, एवं रीति-रिवाजों का अध्ययन किया गया। जेम्सटॉड ने राजपूतों के लोक-विश्वासों, रहन-सहन, रीति-रिवाजों, वेश-भूषा तथा खान-पान का अध्ययन कर राजस्थान का वीरतापूर्ण इतिहास प्रस्तुत किया। जेम्सलॉग ने बंगाली कहावतों का संग्रह करके अन्य देशों में प्रचलित कहावतों से तुलना कर उसका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। जेम्सकार ने हिन्दुओं के दैनन्दिन जीवन, उनके स्वभाव, रीति-रिवाज, धार्मिक, सामाजिक प्रथाओं, धार्मिक त्योहारों तथा अन्य-विश्वासों का परिचय प्रस्तुत किया। विलियम क्रुक ने उत्तर भारत के धार्मिक आचार-विचारों, अनुष्ठानों, विश्वासों, रीति-रिवाजों और लोक-संस्कारों की विशद व्याख्या की। नटेश शास्त्री ने ‘फोकलोर ऑफ सदर्न इण्डिया’ प्रकाशित की जो दक्षिण भारत की लोकवार्ता पर प्रकाश डालती है। इसी प्रकार गंगादत्त उप्रेती, लाल बिहारी डे आदि ने लोकवार्ता का अध्ययन कर लोक-तत्वों का व्याख्यायित किया।

बीसवीं सदी में भी लोक-तत्वों का अध्ययन निर्बाध रूप से होता रहा। डॉ. ग्रियर्सन जैसा पाश्चात्य विद्वान भी “लोक” की ओर उन्मुख हुआ और बंगाल की लोकवार्ता का संग्रह किया। ग्रामीण जन-जीवन में प्रयुक्त होने वाली भाषा की पारिभाषिक शब्दावली प्रस्तुत कर इस शब्दावली से ग्राम्य जीवन के अनन्त लोक-सांस्कृतिक पक्षों का उद्घाटन किया। देवेन्द्र सत्यार्थी ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में घूम-घूम कर लोक-गीतों का संग्रह किया। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने ग्रामगीतों का संकलन किया तथा इन ग्राम गीतों के माध्यम से बताया कि ये गीत हमारे लोक-जीवन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। तत्पश्चात् अनेक संस्थाओं ने लोकवार्ता सम्बन्धी अध्ययन प्रस्तुत किया। डॉ. शशिभूषण दास ने बंगाली साहित्य की पृष्ठभूमि, तान्त्रिक साधनाओं का विश्लेषण किया। डॉ. सत्येन्द्र ने ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन कर वहाँ के लोक-तत्वों का सटीक वर्णन किया। इस प्रकार लोक-तत्व का उदय वैदिक काल में हुआ, वहीं निरन्तर वह अपना विकास करता रहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने भारत में आकर इसका तुलनात्मक अध्ययन किया तथा भारतीयों में इसके अध्ययन के प्रति ललक जगायी। आज “लोक” का अध्ययन इतना विस्तृत हो गया है कि हर क्षेत्र में “लोक” का अध्ययन हो रहा है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि लोक-तत्वों की परम्परा प्राचीन काल से रही है। हमारे लोक-विश्वास, आराधना, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, लोक-वाणी तथा लोक-विचारों की प्राचीनता असंदिग्ध है। इन तत्वों का हर काल में विवेचन होता रहा है।

लोक-तत्व एवं आधुनिक समाज—“लोक” शब्द से उन सभी मानव समूहों का बोध कराया जाता है, जो नगरों अथवा ग्रामीण जातियों में कहीं भी रहते हों। इस “लोक” शब्द की व्यापकता का तो भान हो जाता है, परन्तु अनेक विद्वानों का मानना है कि आज विज्ञान के युग में आधुनिक समाज का शिक्षित वर्ग लोक-तत्वों से पूर्णतया पृथक् हो चुका है। अर्थात् तन्त्र, मन्त्र, जादू-टोना, लोक-कलाओं, रीति-रिवाजों तथा लोक-शब्दावली से नाता तोड़ चुका है, परन्तु विद्वानों का यह मत पूर्णतया सत्य नहीं है, क्योंकि लोक-तत्व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होते हैं, और इनके मूल में हमारे संस्कार होते हैं। कोई भी व्यक्ति कितना ही शिक्षित हो जाये, परन्तु कमोबेश संस्कार उसमें विद्यमान रहते ही हैं। इसी कारण व्यक्ति “लोक” से सम्पृक्त रहता है। डॉ. एलेन डडेसे ने “लोक” को परिभाषित करते हुए कहा है कि “लोक” शब्द मनुष्यों के किसी भी ऐसे समूह का द्योतक हो सकता है, जिसमें समानता का कम से कम एक आधार हो। यदि हम एक आधार व्यवसाय को माने तो यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि आधुनिक समाज भी अपरोक्ष रूप से लोक-तत्वों से जुड़ा हुआ है।

डॉ. शंकर सेन “लोक” को परिभाषित करते हुए स्पष्ट कहते हैं कि किसी न किसी रूप में हम सभी लोग “लोक” शब्द से सम्बोधित किये जा सकते हैं, क्योंकि हम में से कोई भी परम्परा विहीन तथा पूर्वजों के द्वारा छोड़े गये मौखिक ज्ञान से वंचित नहीं है। अर्थात् पूर्वजों की परम्परा और ज्ञान “लोक” का मूल है। जब इस आधार पर आधुनिक समाज पर विचार करें तो स्पष्ट होता है कि चाहे व्यक्ति कितने ही वैज्ञानिक या आधुनिकता में पला हो, परन्तु वह परम्पराओं का निर्वाह अवश्य ही करता है। हमारी प्राचीन परम्पराएँ व रीति-रिवाज आज भी परिवर्तित रूप में अवश्य ही विद्यमान हैं।

आधुनिक समझे जाने वाले समाज में लोक-तत्वों की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य होती है, किन्तु वर्तमान में आधुनिक समाज में व्यक्ति इन तत्वों का प्रयोग किसी न किसी रूप में अवश्य करते हैं। उनके अन्तर्गमन में लोक-विश्वासों तथा लोकाचारों के बीज अज्ञान रूप से विद्यमान रहते हैं, जो अनुकूल अवसर पाकर विभिन्न भावात्मक एवं कलात्मक रूपों में प्रकट होते हैं। डॉ. त्रिलोचन पाण्डे के अनुसार “सुशिक्षित व्यक्ति भी आवश्यकता पड़ने पर जन-साधारण की भाँति लोकोक्तियों एवं मुहावरों आदि का प्रयोग कर लेते हैं, जो कि वस्तुतः लोक की सम्पत्ति हैं और लोक-तत्व हैं।”¹² आधुनिक वर्ग में लोक-तत्वों की स्थिति स्पष्ट करने के लिए इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस प्रकार मानव जाति के इतिहास में, उसके सामाजिक विकास की प्रारम्भिक स्थितियों से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में लोक-तत्व विद्यमान रहे हैं और लोक की प्रत्येक भावात्मक, कलात्मक तथा बौद्धिक उपलब्धि में अभिन्न योग देते रहे हैं। हम यह नित्य प्रति देखते हैं कि आज का बुद्धि प्रधान प्राणी भी सर्वाधिक रूप से लोक में विद्यमान करता है। अतः ये लोक-तत्व आधुनिक समाज में दिखाई देते हैं, परन्तु आधुनिक समाज का अभिजात्यवर्ग लोक समाज तथा जनजातियों के समाज को इतनी शीघ्रता से बदल रहा है कि लोक-तत्वों के विलुप्त हो जाने की आशंका उत्पन्न हो गई है। इसीलिए स्थान-स्थान से उन गीतों, कथाओं, कहावतों आदि को एकत्र करके सुरक्षित रखना चाहिए। सारांश रूप में यही कहा जा सकता है कि व्यक्ति के मूल में लोक-तत्व अपना स्थायी घर बनाये हुए हैं, जो उचित अवसर पाकर परम्परा व संस्कृति के रूप में प्रस्फुटित होते रहते हैं। जिस प्रकार समाज व व्यक्ति एक दूसरे के पूरक हैं, उसी प्रकार व्यक्ति और लोक-तत्व भी एक दूसरे के पूरक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- | | | | |
|----|--|----|---|
| 01 | फोकलोर (मासिक) सित. 1974, वोल्यूम 16, पृ. 299 | 07 | लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. 43 |
| 02 | लोक-साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 3 | 08 | लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. 43 |
| 03 | लोक-साहित्य के प्रतिमान, डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती, पृ. 6 | 09 | लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. 49 |
| 04 | लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. 140-141 | 10 | लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. 55 |
| 05 | लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. 145 | 11 | लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. 57 |
| 06 | हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, सं. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 4 | 12 | लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, पृ. 108 |